P: ISSN NO.: 2321-290X
E: ISSN NO.: 2349-980X
RNI : UPBIL/2013/55327
Shrinkhla Ek Shodhparak Vaicharik Patrika
Vol-II * Issue-X*June-2015

मनुस्मृति में प्रतिपादित सामाजिक मूल्य

हरकेश बैरवा
व्याख्याता,
संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बून्दी (राज.)

सारांश

मनुस्मृति ने समाज को सुव्यवस्थित, सुसंयमित एवं सुसंगठित बनान रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं। राजतंत्र हो या मुगलशासक, स्मृति ने समाज को व्यवस्थित सूत्र में बाँधे रखन के साथ उसे सामाजिक मूल्य एवं कर्त्तव्य परायणता से भी जोड़े रखा। इसमें सभी वर्णों के कर्त्तव्यों का वर्णन है जिन्हें नैतिक मूल्यों के साथ जोड़ा गया। प्राचीन सामाजिक नियम शिथिल होकर अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दता में अभिवृद्धि हो रही है। समाज पर पाश्चात्य संस्कृति का भी प्रभाव है और शिक्षा के बढ़ते प्रसार ने भी समाज को प्रभावित किया। जो मनुस्मृति मानव व्यवहार एवं समाज का नियामक शास्त्र रहा है, उसे लोग मानस–पटल से विस्मृत कर रहे हैं। वर्तमान में मानवीय रिश्तों के मायने बदल गए, क्योंकि वे मूल्य केन्द्रित न होकर अर्थ केन्द्रित बनते जा रहे हैं। ऐसे में क्या मनुस्मृति की आज भी कोई मूल्यवता है या नहीं। इसका अनुशीलन करने पर मनुस्मृति से विदित होता है कि समाज की अशुभ एवं विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए अनेक सामाजिक मूल्यों का प्रतिपादन करती है। आधुनिक समाज के शोधन एवं सामजस्य के स्थापन हेतु इन मूल्यों का महत्त्व है, क्योंकि ये व्यक्ति के निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के लिए आज भी अपनो मूल्यता रखते हैं।

मुख्य शब्द : सामाजिक मूल्य, मानस–पटल, संकल्प विनय, कृतज्ञता, कण्टक, तस्कर, शुद्धि नियामक शास्त्र।

परिचय

मनुस्मृति ने समाज को सुव्यवस्थित रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया, इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं। राजतंत्र हो या मुगलशासक, स्मृति ने समाज को व्यवस्थित सूत्र में बाँधे रखने के साथ उसे सामाजिक मूल्य एवं कर्त्तव्य परायणता से भी जोड़े रखा। इसमें सभी वर्णों के कर्त्तव्यों का वर्णन है जिन्हें नैतिक मूल्यों के साथ जोड़ा गया। आधुनिक प्रजातान्त्रिक युग के कारण समाज–व्यवस्था मे परिवर्तन तेजी से घटित हुआ और यह प्रक्रिया सतत् चल रही है। व्यक्तियों में आज प्रतिस्पर्धा एवं महत्त्वाकांक्षा बढ़ रही है। प्राचीन सामाजिक नियम शिथिल होकर अपेक्षाकृत स्वतन्त्रता एवं स्वच्छन्दता में अभिवृद्धि हो रही है। तब अपराध करने वाले को पहले समाज के स्तर पर भी दण्ड़ित या बहिस्कृत कर दिया जाता था, अब अपराध को रोकने एवं अपराधी को दण्डित करने का कार्य सरकार, पुलिस एवं न्यायालय का कार्य हो गया। व्यक्ति अब अपने कर्त्तव्यों को भूलकर अधिकारों की मांग के प्रति अधिक सचेष्ट दिखाई पड़ रहा है। धर्म प्रचारक एवं धर्मोपदेशक भी समाज को विभिन्न अपराधा को करने से बचाने में उल्लेखनीय योगदान कर रहे हैं। समाज पर पाश्चात्य संस्कृति का भी प्रभाव है और शिक्षा के बढ़ते प्रसार ने भी समाज को प्रभावित किया। जो मनुस्मृति मानव व्यवहार एवं समाज का नियामक शास्त्र रहा है, उसे लोग मानस–पटल से विस्मृत कर रहे हैं। वर्तमान में मानवीय रिश्तों के मायने बदल गए, क्योंकि वे मूल्य केन्द्रित न होकर अर्थ केन्द्रित बनते जा रहे हैं। ऐसे में क्या मनुस्मृति की आज भी कोई मूल्यवता है या नहीं। इसका अनुशीलन करने पर मनुस्मृति से विदित होता है कि उसमें ऐसे बहुत से सामाजिक मूल्य है, जो बदलत समाज के व्यवस्थित संचालन में उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। उनमें से कुछ का उल्लेख किया जा रहा है–

वृद्धजनों की सेवा

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव एवं वैयक्तिक भौतिक सुखों की पूर्ति में सिमटता आज का युवा दम्पति अपने माता–पिता एवं वृद्धजनों की सेवा को भार समझन लगे हैं। माता–पिता द्वारा कृत उपकारों के प्रति भी उसके मन में कृतज्ञता के भाव नहीं रहे। वृद्धसेवा की प्ररेणा देते हुए मनु ने लिखा है कि वृद्धसेवा का तात्पर्य मात्र उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति करना ही नहीं, अपितु उनसे प्रिय वचनों से विचार–विमर्श भी वृद्ध सेवा है। उनको सेवा करने वाला

व्यक्ति राक्षसों द्वारा भी पूजा जाता है अर्थात क्रूर प्रकृति वाला व्यक्ति भी उसके इस कार्य से प्रभावित होकर विनम्र व्यवहार करने लगता है–

वृद्धांश्च नित्यं सेवेत विप्रान्वेदविदः शुचीन्।
वृद्धसेवी हि सततं रक्षोभिरपि पूज्यते।।[1]

उन्होने द्वितीय अध्याय में लिखा है कि सर्वदा वृद्धजनों की सेवा एवं अभिवादन से मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बल की अभिवृद्धि होती है –

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।[2]

विनययुक्त व्यवहार

विद्या प्राप्ति के लिए तो विनय का महत्त्व होता हो है, किन्तु विनय का आचरण राज्य प्रशासन में भी आवश्यक होता है। मनुस्मृति के अनुसार जो राजा विनय युक्त होता है, वह कभी नष्ट नहीं होता। अविनय के कारण वेन, नहुष, पिजवन के पुत्र सुदा, सुमुख और नेमि आदि राजा नष्ट हो गये, जबकि विनय के कारण पृथु और मनु ने राज्य, कुबेर ने धन व ऐश्वर्य तथा क्षत्रिय होकर भी विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व को प्राप्त किया। अविनय के कारण बहुत से राजा विनाश को प्राप्त हो गये और विनय के कारण वन में रहने वाले भी राज्यों को प्राप्त कर गये–

विनीतात्मा हि नृपतिर्न विनश्यति कर्हिचित् .....
वनस्था अपि राज्यानि विनयात्प्रतिपेदिरे।।[3]

कर्त्तव्य परायणता

जिसको जो मान्य कर्म मिला है, उस कार्य को निष्ठापूर्वक करना चाहिए। अध्यापन कार्य में लगे ब्राह्मण के लिए कहा है कि जो स्वाध्याय के विरोधी कार्य है, उन सबको छोड़कर अध्यापन कार्य को जटिल परिस्थितियों में भी पूर्ण करना चाहिए, यही अध्यापन की कृतार्थता है।[4] वर्तमानकाल में अनेक अध्यापक, अध्यापन के साथ व्यापारिक कार्य करने में लगे हुए है, उनके लिए यह कथन अच्छा संदे"ा देता है। क्षत्रिय राजाओं के कर्त्तव्यपालान का पुरस्कार स्वर्ग होता है। मनु के अनुसार प्रजापालन मे तत्पर राजा आर्य पुरुषों (सदाचारियो) की रक्षा एवं चोर, व्यभिचारी आदि समाज कण्टकों के शोधन करके स्वर्ग में जाते हैं। जो तस्कर आदि कण्टकों को दूर न करके प्रजा से कर लेता है, उसके राज्य में निवास करने वाले लोग क्षुब्ध हो जाते हैं, इस कारण राजा स्वर्ग पाने के अधिकार से वंचित हो जाता है। जिस बाहुबली राजा के आश्रय में राज्य तस्कर आदि कण्टकों से निर्भय रहता है, उस राजा का राज्य सींचे गये वृक्ष के समान अभिवृद्धि को पाता है –

रक्षणादार्यवृत्तानां कण्टकानां च शोधनात् ....
तस्य तद्वर्धते नित्यं सिच्यमान इव द्रुमः।।[5]

सम्यक् संकल्प

भगवद्गीता में निष्काम होने की प्ररेणा दी है, जबकि मनुस्मृति में सकामता का समर्थन किया है। कर्मफल की अभिलाषा करना अच्छा नहीं है, किन्तु इच्छा का अभाव (अकामता) भी अच्छा नहीं है, क्योंकि वेद का अध्ययन और वैदिक कर्मयोग भी इच्छा से सम्भव है। इच्छा का मूल संकल्प है (इच्छा संकल्पमूलक), यज्ञ, व्रत और समस्त यमादि धर्म संकल्प से ही होते हैं। इस संसार में इच्छा के बिना किसी का कोई कार्य दिखाई नहीं देता है। मनुष्य जो कुछ करता है, वह सब इच्छा की चेष्टा है।[6] सामाजिक सन्दर्भ में सम्यक् संकल्प का होना आवश्यक है। समाज का अभ्युदय सम्यक् संकल्प से ही संभव है, क्योंकि प्रत्येक कल्याणकारी कार्य के लिए तदनुरूप संकल्प अपेक्षित है। याज्ञवल्क्य ने सम्यक् संकल्प को धर्म का मूल कहा है

सम्यक्संकल्पजः कामो धर्ममूलमिदं स्मृतम्।[7]

व्यसनों का त्याग

समाज के किसी भी वर्ण या जाति का व्यक्ति क्यों न हो, उसे व्यसनों से दूर रहना चाहिए, क्योंकि व्यसन स्वयं एवं परिवार के लिए विपत्ति के घर होते हैं। मनुस्मृति में दस कामज एवं आठ क्रोधज व्यसन बताये हैं। मृगया, जुआ, दिवा–निद्रा, परनिन्दा, स्त्री में अत्यासक्ति, मद्यपान, नाच, गान में आसक्ति, व्यर्थ भ्रमण ये दस कामजन्य व्यसन है। चुगलखोरी, दुस्साहस, द्रोह, ईर्ष्या, असूया, अर्थदूषण, कठोरवचन और कठोरदण्ड़ ये आठ क्रोधजन्य व्यसन है।[8] उपर्युक्त ये व्यसन अन्तः में दुःखदायी होते हैं, क्योंकि कामजन्य व्यसनों में आसक्त व्यक्ति अर्थ एवं धर्म से भ्रष्ट हो जाता है और क्रोधजन्य व्यसनों म आसक्त व्यक्ति आत्मा से भ्रष्ट (स्वयं भ्रष्ट) हो जाता है।[9] व्यसन मृत्यु से भी अधिक कष्ट कारक होते हैं, क्योंकि व्यसनी पुरुष नरक में और अव्यसनी पुरुष स्वर्ग में जाते हैं –

व्यसनस्य च मृत्योश्च व्यसनं कष्टमुच्यते।
व्यसन्यधोऽधो व्रजति स्वर्यात्यव्यसनी मृतः।।[10]

मनुस्मृति में सुरापान को अन्नों का मल निरुपित किया है और ब्राह्मण, क्षत्रिय व वैश्य के लिए उसे त्याज्य बताया है। सुरा के तीन प्रकार होते हैं – गौड़ी, पैष्टी और माध्वी। गुड़ से बनी सुरा को गौड़ी, आरे से बनी को पैष्टी तथा महुए के फूलों से बनी हुई सुरा को माध्वी कहा गया है। उस समय ये तीनों प्रकार की सुरा त्याज्य होती थी, क्योंकि मद्यपान करने वाले का विवेक कुण्ठित हो जाता है।[11]

मृदुभाषी आचरण

मनुस्मृति में मानव को दोषरहित आचरण हेतु प्रेरित करने के लिए मन, वचन एवं कर्म में निर्मलता का संदेश दिया है। मनुस्मृति (6.45) के परिशिष्ट श्लोक में लिखा है कि सत्य, किसी की हिंसा न करने वाली, बुराई न करने वाली, दोषरहित, कठोरता रहित (मधुर), क्रूरता रहित और किसी की सत्य या झूठी निन्दा रहित वाणी का प्रयोग करना चाहिए। सत्य से पवित्र वचन कहे और मन से पवित्र आचरण करें –

सत्यपूतां वदेद्वाचं मनःपूतं समाचरेत्।[12]

क्रोध से युक्त भी किसी के ऊपर स्वयं क्रोध न करे। किसी के द्वारा अपनी निन्दा करने पर भी उससे मधुर (निन्दारहित) वचन बोले और सप्त द्वारों से निर्गत विनाश शील (व्यर्थ) वचन न बोले। सप्त द्वारों से तात्पर्य–नेत्र आदि पाँच बाहरी इन्द्रियाँ, मन व बुद्धि दो भीतरी इन्द्रियाँ इन सातों से गृहीत होने पर ही वचन प्रवृत्ति होती है, ऐसी व्यर्थ की बातें न करे अर्थात् ब्रह्मभिन्न विषयक होने से न"वर वचन न बोले।[13] गोविन्दराज ने 'सप्तद्वारावकीर्णा' का अर्थ–धर्म, अर्थ, काम, धमार्थ,

अर्थकाम, धर्मकाम, धमार्थकाम– ये सात वचन प्रवृत्ति के द्वार बताये हैं, इनसे विक्षिप्त वेद विषय रहित व्यर्थ की बातें न करने की सलाह दी है।

साक्षियों को सत्य बोलना

मनुस्मृति में झूठा साक्ष्य देने का निषेध किया गया है, ताकि सामाजिक न्याय की रक्षा हो सकें। गवाह में सत्य कहने वाला साक्षी मरने पर उत्तम लोकों को और इस लोक में श्रेष्ठ य"ा को पाता है, क्योंकि यह सत्यभाषण ब्रह्मा से पूजित होता है। गवाही में असत्य बोलता हुआ मनुष्य वरुण के पा"ा (सर्परूप रस्सी) से बाँधा जाता है तथा जलोदर रोग के परव"ा होकर सौ जन्म तक पीड़ित होता है, इस कारण गवाही में सत्य बोलना चाहिए। गवाह सत्य से पवित्र होता है अर्थात् पाप से छूट जाता है। सत्य से उसका धर्म बढता है, इस कारण गवाही में सभी वर्णों के विषय में सत्य ही बोलना चाहिए, क्योंकि आत्मा ही शुभ और अ"ाुभ कर्मों का साक्षी होता है। आत्मा की गति ही आत्मा होता है, इस कारण मनुष्यों के श्रेष्ठ साक्षी आत्मा का (असत्य बोलकर) अपमान नहीं करना चाहिए–

सत्यं साक्ष्ये ब्रुवन्साक्षी लोकानाप्नोति पुष्कलान्....
माऽवमंस्थाः स्वमात्मानं नृणां साक्षिणमुत्तम्।।[14]

मनुष्यों में ब्राह्मण, आका"ाीय तेजों में सूर्य और सम्पूर्ण शरीर में मस्तक के समान सब धर्मों में सत्य श्रेष्ठ होता है। सत्य से बढ़कर दूसरा धर्म और असत्य से बढकर दूसरा पाप नहीं है, इस कारण गवाही में वि"ोष रूप से सत्य श्रेष्ठ माना जाता है। जो केवल सत्य ही बोलता है, असत्य (दूसरा) नहीं बोलता, वह कदापि भूलता नहीं है, इसलिए सत्य समुद्र की नाव के समान स्वर्ग का द्वार होता है–

ब्राह्मणो वै मनुष्याणामादित्यस्तेजसां दिवि...
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव।।[15]

शुभाशुभ कर्मफल

भारतीय समाज की मान्यतानुसार जो जैसा कर्म करता है, उसे उसके अनुरूप फल की प्राप्ति होती है। मनुस्मृति में भी इस तथ्य को प्रतिपादित करते हुए लिखा है कि मनुष्यों के कायिक, वाचिक एवं मानसिक कर्म शुभा"ाुभ फल देने वाले होते हैं और उनसे उत्पन्न होने वाली मनुष्यों की उत्तम, मध्यम तथा अद्यम गतियाँ (जन्म) भी होती है।[16] परिशिष्ट श्लोक में भी ऐसा ही लिखा है मनुष्य शुभ कर्मों से देवयोनि को, शुभाशुभ दोनों कर्मों से मनुष्य योनि को और केवल अशुभ कर्मों से तिर्यग्योनि (पशु, पक्षी, वृक्ष, लतादि) को प्राप्त होते हैं –

शुभैः प्रयोगैर्देवत्वं व्यामिश्रैर्मानुषो भवेत्।
अशुभैः केवलैश्चैव तिर्यग्योनिषु जायते।।[17]

मानसिक कर्म

दूसरे के द्रव्य को अन्याय से भी लेने का विचार करना, मन से निषिद्ध कार्य करने की इच्छा करना, असत्य हठ करना ये तीन प्रकार के मानसिक अशुभ कर्म है।[18] इसके विपरीत न्यायपूर्वक दूसरे के द्रव्य को लेने का विचार करना, शास्त्रविहित कर्म करने की इच्छा करना, आस्तिक बुद्धि रखना ये तीन मानसिक शुभ कर्म है।

वाचिक कर्म

कटु बोलना, झूठ बोलना, परोक्ष में किसी का दोष कहना, निष्प्रयोजन बातें करना ये चार प्रकार के वाचिक अशुभ कर्म है।[19] इसके विपरीत मधुर बोलना, सत्य बोलना, परोक्ष में भी दूसरे का दोष छिपाना या गुण को ही बतलाना, हितकारी बातें करना ये चार प्रकार के वाचिक शुभ कर्म है।

शारीरिक कर्म

बिना दी हुई दूसरे की वस्तु लेना, शास्त्र वर्जित हिंसा करना, पर स्त्री के साथ सम्भोग करना ये तीन प्रकार के शारीरिक अशुभ कर्म है।[20] इसके विपरीत न्यायपूर्वक दी हुई वस्तु को लेना, शास्त्रविहित अश्वमेधादि यज्ञ में हिंसा करना, शास्त्र प्रतिपादित समयों में स्वस्त्री के साथ संभोग करना ये तीन प्रकार के शारीरिक शुभ कर्म है। यह (देही–जीव) मानसिक कर्मों के फल को मन से, वाचिक कर्मों के फल को वचन से और शारीरिक कर्मों के फल को शरीर से ही भोगता है।[21] शरीर से त्रिविध, वचन से चतुर्विध और मन से त्रिविध अधर्ममार्गों (अशुभ कर्मों) को छोड़ देना चाहिए।[22] मनुष्य शारीरिक कर्म के दोषों से स्थावर (वृक्ष, लता, गुल्म, पर्वत आदि) योनि को, वाचिक कर्म के दोषों से पक्षी, मृग (पशु, कीट, पतंग आदि) योनि को तथा मानसिक कर्म के दोषों से अन्त्य जाति (चण्डालादि हीन जाति) को प्राप्त करते हैं –

शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः।
वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्।।[23]

ज्ञानग्राही एवं सकारात्मक सोच

मनुस्मृति में समाज के उत्थान हेतु व्यक्ति के लिए विद्याग्राही एवं सकारात्मक सोच रखने पर बल दिया गया कहा है। श्रद्धायुक्त होकर अपनी अपेक्षा नीच व्यक्ति से भी श्रेष्ठ विद्या को सीखना चाहिए। चण्डाल से भी उत्कृष्ट धर्म (मोक्षोपायभूत आत्मज्ञान) को प्राप्त करना चाहिए तथा अपने से नीचे कुल से भी ("ाुभ लक्षणों से युक्त) स्त्रीरत्न को ग्रहण करना चाहिए। विष से भी अमृत को, बालक से भी सुभाषित को, "ात्रु से भी सदाचार को और अपवित्र स्थान से भी बहुमूल्य द्रव्य को ग्रहण करना चाहिए–

श्रद्दधानः शुभां विद्यामाददीतावरादपि।
अन्त्यादपि परं धर्मं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि।।
विषादप्यमृतं ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम्।
अमित्रादपि सद्वृत्तममेध्यादपि कांचनम्।।[24]

विविध विद्याओं के ज्ञाता से उन विद्याओं को सीखना चाहिए, जो धर्मस्थिति का कारण होती है। ज्ञाता विद्वानों से त्रयी, दण्डनीति, आन्वीक्षिकी और वार्ता विद्या को सिखना चाहिए अर्थात् 'त्रयी' विद्या से धर्म विषयक ज्ञान होता है, उसे वेदज्ञाता से सिखना चाहिए। 'दण्डनीति' विद्या से नीति और अनीति का ज्ञान होता है, उसे अर्थ"ाास्त्र से सीखना चाहिए। 'आन्वीक्षिकी' विद्या से तर्क–विज्ञान का ज्ञान होता है। 'आत्मविद्या' से उन्नति एवं दुःख में क्रम"ाः हर्ष तथा शोक का निग्रह होता है और 'वार्ता' विद्या से अर्थ–अनर्थ, खेती, व्यापार एवं पशुपालन आदि के लिए धनादि संग्रह तथा तद्विषयक उपायों का ज्ञान होता है, उसे किसान, व्यापारी आदि से सीखना चाहिए –

त्रैविद्येभ्यस्त्रयीं विद्यां दण्डनीतिं च शाश्वतीम्।
आन्वीक्षिकीं चात्मविद्यां वार्तारम्भांश्च लोकतः।।[25]

शुद्धता

क्षमा, दान, जप, तप, अस्तेय आदि मूल्यों से युक्त धर्म का समाज के शोधन एवं समन्वय के लिए वि"ोष महत्त्व है। धर्म का तात्पर्य बाह्य क्रियाकाण्ड नहीं अपितु क्षमा, दान, जप, तप, अस्तेय आदि जीवन मूल्यों से निहित है। ये जीवन मूल्य व्यक्ति को शुद्ध बनाकर समाज की शुद्धि में भी महत्त्वपूर्ण योगदान का निर्वाह करते हैं। मनु के मतानुसार विद्वानों की शुद्धि क्षमाभाव से, अकार्य (धर्म विरुद्ध कार्य) करने वालों की शुद्धि दान देने से, गुप्त पाप करने वाले की शुद्धि (गायत्री आदि वेदमंत्रों के) जप से और श्रेष्ठ वेदज्ञाता की शुद्धि तपस्या से होती है।[26] क्षमा समस्त प्राणियों का उत्तम गुण है, इससे ही इस लोक तथा परलोक में सुख मिलता है।

दान

भारतीय समाज के मन में जब करूणा, त्याग एवं उदारता की लहर उठती है तभी दान दिया जा सकता है। यह मनुष्य के हृदय में उदार, दया एवं प्रेम की सरिता बहाकर परोपकार व विश्वकल्याण की भावना को जागृत करता है। मनु ने कलियुग में केवल दान को प्रधान धर्म कहा है–

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे।।[27]

अपने अधिकार की वस्तु को बिना किसी प्रतिफल की भावना से त्याग करना ही दान माना है। यहाँ वस्तु के त्यागभाव से दो अर्थ लिये जा सकते हैं– उपकार एवं कल्याण। उपकार की भावना से दिया जाने वाला दान अनुकम्पा कहलाता है, यह घर आए किसी भी याचक को दिया जा सकता है अर्थात् दुःखी प्राणी के दुःख को दूर करने के लिए जो कुछ दिया जाता है वह उपकार की श्रेणी में आता है। कल्याण की भावना से दिया जाने वाला दान श्रद्धादान कहलाता है, यह गुरुओं, वेदपाठी ब्राह्मणों एवं ब्रह्मज्ञानियों को दिया जाता हैं।

अस्तेय

अस्तेय का अर्थ है– चोरी न करना। अन्याय या छल–कपट से स्वामी के परोक्ष में किसी वस्तु का अपहरण कर भाग जाना 'स्तेय' कहलाता है, उससे भिन्न अपहरण न करना अस्तेय है। मनु ने दूसरों के धन को चुराने वाले तस्कर (चोर) दो प्रकार के माने हैं– प्रकाश (प्रकट या खुले रूप वाले) एवं अप्रकाश (गुप्त रूप वाले)। इन दोनों प्रकारों के चोरों में प्रथम चोर मूल्य एवं तोल (नाप) में लोगों के देखते–देखते सोना, कपड़ा आदि बेचते समय ठगने वाले, घूसखोर, डराकर धन लेने वाले ठग, जुआरी, धन या पुत्रादि के लाभ होने की असत्य बातें कहकर लोगों से धन लेने वाले, उत्तम वेष धारण कर अपने दूषित कर्म को छिपाकर लोगों से धन लेने वाले, हस्तरेखा आदि को देखकर नहीं जानते हुए भी फल को बतलाकर धन लेने वाले, अशिक्षित हाथीवान्, मिथ्याचिकित्सक, चित्रकार, शिल्पी, परद्रव्यापहरण में चतुर, वेश्या एवं इस प्रकार के अन्य लोगों को तथा ब्राह्मणादि का वेष धारण कर गुप्त रूप से जनता को ठगने वाले अनार्यों को प्रत्यक्ष तस्कर (प्रकटरूप में चोर) समझा जाना चाहिए। और सेंध डालकर या जंगल आदि में छिपकर रहते हुए दूसरों के धन को चुराने वाले अप्रत्यक्ष (गुप्त) चोर कहलाते हैं–

द्विविधांस्तस्करान्विद्यात्परद्रव्यापहारकान्।
प्रकाशांश्चाप्रकाशांश्च....
निगूढचारिणश्चान्याननार्यानार्यलिङ्गिनः।।[28]

चोरी को सामाजिक दृष्टिकोण से अत्यन्त गर्हित माना है। चोरी करना अधर्म है जो किसी भी समाज के लिए दण्डनीय है तथा इसके विपरीत चोरी न करना किसी भी समाज के लिए अपरिहार्य धर्म माना गया है।

धनार्जन में शुद्धि

समाज प्रायः अर्थार्जन में अनैतिकता एवं भ्रष्टाचार से दूषित होता जा रहा है। मनुस्मृति में अर्थार्जन की शुद्धता को श्रेष्ठ शुद्धि बताया है, क्योंकि सब शुद्धियों में धन की शुद्धि (न्यायापार्जित धन का होना) ही श्रेष्ठ शुद्धि होती है, जो धन में शुद्ध है, वही शुद्ध है। जो केवल जल मिट्टी आदि से शुद्ध है वह शुद्ध नहीं है। प्रायः अपवित्र वस्तुओं की जल मिट्टी से शुद्धि की जाती है–

सर्वेषामेव शौचानामर्थशौचं परं स्मृतम्।
योऽर्थे शुचिर्हि स शुचिर्न मृद्वारिशुचिः शुचिः।।[29]

उक्त श्लोक का यह संदे"ा समाज को दूषित करने वाले उन व्यक्तियों के लिए है, जो अर्थलोभ के व"ाीभूत भ्रष्टाचार में लिप्त होते हैं तथा नैतिक मानदण्डों को दर किनार करके अन्य व्यक्तियों को भी उस ओर आकर्षित करते हैं। ब्राह्मण की जीविका के लिए मनु ने कहा है कि वह अकुटिल, अदुष्ट एवं शुद्ध जीविका को अपनाए तथा उसके लिए कभी लोक व्यवहार का अनुसरण न करें। राजा के लिए कहा है कि जहाँ राजा पापी व्यक्तियों के धन को दण्ड रूप में भी नहीं लेता है, उस राज्य में यथा समय मनुष्य उत्पन्न होकर दीर्घजीवी होते हैं। अभिप्राय है कि काला धन राज्य के लिए सुखकर नहीं होता, वह अनीति एवं अन्याय को बढावा देता है।[30] यदि राजा महापातकियों के धन को ग्रहण करता है, तो उसके लोभ के कारण वह भी उस दोष से लिप्त हो जाता है।

संतोषवृत्ति (तृष्णा पर संयम)

मनस्मृति में ब्राह्मण को संतोषवृत्ति से जीवन–यापन की प्रेरणा दी गई है, क्योंकि संतोष ही सुख का मूल होता है और असंतोष (तृष्णा) दुःख का कारण होता है –

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलं हि सुखं दुःखमूलं विपर्ययः।।[31]

उक्त कथन सामान्यतः सभी मनुष्यों पर लागु होता है, क्योंकि तृष्णा ही दुःख का कारण है। इस दुःखनिवारणार्थ श्रेष्ठ विवेकस्वरूप ज्ञान को अपनाकर संतोषवृत्ति को जीवन में स्थान देना चाहिए।

इन्द्रिय–निग्रह

यह शाश्वत सत्य है कि किसी भी धर्मकृत्य में विषय–वासना निश्चित रूप से बाधक हो जाती है, जिसका समाधान सामाजिक धर्मकृत्यों के लिए अपेक्षित हो जाता हैं। इन्द्रिय निग्रह के विषय में मनु का कथन है कि जिस प्रकार रथ को चलाने के लिए सारथी द्वारा घोड़ों को सम्भालना पड़ता है, तभी रथ चल पाता है, उसी प्रकार व्यक्ति या विद्वानों को विषय–वासना की ओर दौड़ती हुई इन्द्रियों को नियन्त्रित करने का प्रयत्न करना चाहिए। इन्द्रियों के विषयों में आसक्त होकर मनुष्य अवश्य ही दोषी बन जाता है और इनको वश में करके सिद्धि को

प्राप्त करता है।[32] उक्त कथन का तात्पर्य है कि मनुष्य इन्द्रियों के व"ाीभूत होकर दुष्कृत्य करता है, जिससे समाज प्रदूषित होता है। अतः समाज की शुद्धता के लिए सभी को इन्द्रियों को व"ा में करना चाहिए। सब इन्द्रियों में से एक भी इन्द्रिय विषयासक्त रहती है तो उससे मनुष्य की बुद्धि उसी प्रकार नष्ट हो जाती है, जिस प्रकार छिद्रयुक्त चमड़ के मशक से सब पानी बहकर नष्ट हो जाता है। अतः समस्त कार्यों की सिद्धि के लिए मन और इन्द्रियों को संयमित करना अपेक्षित है–

इन्द्रियाणां तु सर्वेषां यद्येकं क्षरतीन्द्रियम्।
तेनास्य क्षरति प्रज्ञा दृतेः पादादिवोदकम्।।
वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा।
सर्वान् संसाधयेदर्थानक्षिण्वन् योगतस्तनुम्।।[33]

गीता में लिखा है कि जिस प्रकार कछुवा अपने अंगों को संकुचित करके खोल के भीतर कर लेता है, उसी तरह जो मनुष्य अपनी इन्द्रियों को इन्द्रिय विषयों से खींच लेता है, वह पूर्ण चेतना में दृढ़तापूर्वक स्थिर हो जाता है–

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता।।[34]

नारी का सम्मान

समाज में नारी का क्या महत्त्व है? उसे जानते हुए मनुस्मृतिकार ने उनकी सदैव रक्षा करने का आदे"ा दिया है। नारी किसी भी वर्ण की क्यों न हो, उसकी सदैव रक्षा करनो चाहिए– चतुर्णामपि वर्णानां दारा रक्ष्यतमाः सदा।[35] समस्त वर्णों के इस उत्तम धर्म को देखते हुए दुर्बल (अन्धे, लंगडे, रोगी, निर्धन आदि) व्यक्ति भी नारी की रक्षा करने के लिए प्रयत्न करते है। प्रयत्नपूर्वक नारी की रक्षा करता हुआ मनुष्य स्वयं, सन्तान, आचारण, कुल, आत्मा, धर्म आदि की रक्षा करता है, इस कारण नारियों की रक्षा के लिए यत्न करना चाहिए।[36] मनुस्मृति में नारियों के शील एवं चरित्र रक्षा पर वि"ोष बल दिया है, क्योंकि नारी की रक्षा बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र करते हैं–

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।[37]

मनुस्मृति में नारी के उन छः दूषणों को बताया है, जिनसे पारिवारिक विघटन एवं सामाजिक व्यवस्था असंतुलित होती है। मद्यादि मादक द्रव्यों का पान या प्रकारान्तर से सेवन करना, दुष्टजनों से संसर्ग करना, पति के साथ जान बुझकर विरह करना, स्वच्छन्द भ्रमण करना, असमय शयन, दूसरे के घर में निवास करना।[38] समाज में नारी का गरिमामय स्थान है, इसलिए उन्हें गरिमा को भंग करने वाले उपर्युक्त दूषणों से बचना चाहिए। नारी के सम्मान में शान्ति, सुख, आनन्द का निवास होता है। जिस कुल में नारियों की पूजा होती है, उस कुल में देवता रमण करते हैं। जहाँ इनकी पूजा नहीं होती है, वहाँ सब क्रियाएँ निष्फल होती है–

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[39]

परनारी त्याज्य

मनुस्मृति में परनारी के सेवन को त्याज्य बताया है, क्योंकि परनारी सेवन से आयु घटती है।[40] बडे भाई की पत्नी छोटे भाई की गुरुपत्नी के सदृ"ा आदरणीय तथा छोटे भाई की पत्नी बड़े भाई की पुत्रवधू के समान समझने की प्रेरणा मनुस्मृति में दी गई है –

भ्रातुर्ज्येष्ठस्य भार्या वा गुरुपत्न्यनुजस्य सा।
यवीयसस्तु या भार्या स्नुषा ज्येष्ठस्य सा स्मृता।।[41]

परा"ार ने रजोधर्म उपरान्त अपनी पत्नी से सहवास करना प्रत्येक विवाहित व्यक्ति का पुनीत धर्म बताया है, यदि कोई स्वस्थ व्यक्ति ऋतुकाल में पत्नी से सहवास नहीं करता, वह भ्रूण हत्या का दोषी माना जाता है–

ऋतुस्नातां तु यो भार्यां सन्निधौ नोपगच्छति।
घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः।।[42]

भोगवाद पर अंकुश

वर्तमानकालीन उपभोक्ता संस्कृति में भोगवाद बढ़ता जा रहा है, जिसका परिणाम व्यक्ति में असंतोष और पारिवारिक समाज का विघटन हो रहा है। मनुस्मृति मे स्पष्ट लिखा है कि विषयों के उपभोग से कामनाएँ कभी शान्त नही होती, बल्कि उसकी कामनाएँ उसी प्रकार बढ़ जाती है, जिस प्रकार हवि डालने से अग्नि बढती है। जो मनुष्य सब कामनाओं को प्राप्त कर ले और जो मनुष्य सब कामनाओं का त्याग कर दे। उन दोनों में से सब कामनाओं को प्राप्त करने वाले मनुष्य की अपेक्षा सब कामनाओं का त्याग करने वाला श्रेष्ठ होता है –

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिर्धते।।
यश्चैतान्प्राप्नुयात्सर्वान् यश्चैतान्केवलांस्त्यजेत्।
प्रापणात्सर्वकामानां परित्यागो विशिष्यते।।[43]

परिवार में आत्मीयभाव

मनु के अनुसार सहोदर भाईयों में से यदि एक भाई के भी पुत्र हो तो उसी से पुत्रहीन अन्य सभी भाई पुत्रवान् कहलाते हैं और पतिवाली स्त्रियों में से यदि एक स्त्री को पुत्र उत्पन्न हो जाय तो पुत्रहीना शेष सब स्त्रियाँ उसी पुत्र से पुत्रवतो कहलाती है।[44] अतः आत्मीयता का यह भाव आज विलुप्त होता जा रहा है।

पुत्र–पुत्री में समभाव

भारतीय संस्कृति की मान्यतानुसार पुत्र का उत्पन्न होना आवश्यक है। उसके बिना स्वर्ग की गति नहीं मिलती – **अपुत्रस्य गतिर्नास्ति।** पुत्र के अभाव में यह समस्या होती है कि सम्पत्ति का उत्तराधिकारी कौन होगा? किन्तु मनुस्मृति में इस समस्या का समाधान सहज ही कर दिया गया कि पुत्र के समान ही पुत्री होती है ('आत्मा वै पुत्रनामानि' इत्यादि श्रुतिवचन से) जिस प्रकार पुत्र पिता की आत्मा है, उसी प्रकार पुत्री भी है। अत एव आत्मा स्वरूप उस पुत्री के रहते हुए दूसरा सम्पत्ति को कैसे ले सकता है। समाज में पुत्री की ऐसी प्रतिष्ठा पुत्र के पीछे भागते लोगों को एक चेतावनी है। माता के धन पर भी अविवाहित पुत्री का ही अधिकार होता है –

यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा।
तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत्।।
मातुस्तु यौतकं यत्स्यात्कुमारीभाग एव सः।
दौहित्र एव च हरेदपुत्रस्याखिलं धनम्।।[45]

प्रायश्चित्त विधान

स्मृतिकार ने विविध दोषों की शुद्धि के लिए प्रायश्चित्त का विधान किया। यह विधान मनोवैज्ञानिक

उपाय है, जो व्यक्ति की तपस्या आदि से शुद्धि करता है। मनुस्मृति के अनुसार शास्त्रोक्त कर्म को न करता हुआ, शास्त्रप्रतिषिद्ध कर्म को करता हुआ और इन्द्रियों के विषयों में अत्यन्त आसक्त होता हुआ मनुष्य प्रायश्चित्त करने के योग्य होता है। अज्ञानतावश किये गये पाप में प्रायश्चित करने को कुछ विद्वान् कहते है तथा ज्ञानताव"ा किये गये पाप में भी कुछ आचार्य श्रति को देखने से प्रायश्चित करने को कहते हैं।[46] जहाँ प्रायश्चित्त से भी शुद्धि का प्रसंग न बने तो वहाँ दण्ड का विधान किया है। जब व्यक्ति पापकार्य से न रुके तो दण्ड़ ही उसका उपाय है–

न हि दण्डादृते शक्यः कर्तुं पापविनिग्रहः।[47]

इस प्रकार मनुस्मृति समाज की अशभ एवं विध्वंसात्मक प्रवृत्तियों को रोकने के लिए अनेक सामाजिक मूल्यों का प्रतिपादन करती है। आधुनिक समाज के शोधन एवं सामजस्य के स्थापन हेतु इन मूल्यों का महत्त्व है, क्योंकि ये व्यक्ति के निजी, पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन के लिए आज भी अपनो मूल्यवता रखते हैं।

संन्दर्भ संकेत

1. मनुस्मृति 7.38,
2. मनुस्मृति 2.121,
3. मनुस्मृति 7.39–42,
4. मनुस्मृति 4.17,
5. मनुस्मृति 9.253–55,
6. मनुस्मृति 2.2–4,
7. याज्ञवल्क्यस्मृति 1.7,
8. मनुस्मृति 7.45,47–48,
9. मनुस्मृति 7.46,
10. मनुस्मृति 7.53,
11. मनुस्मृति 11.93–94,
12. मनुस्मृति 6.46,
13. मनुस्मृति 6.48,
14. मनुस्मृति 8.81–84,
15. मनुस्मृति 8.82 के परि"ाष्ट श्लोक 6–8,
16. मनुस्मृति 12.3,
17. मनुस्मृति 12.9 का परिशिष्ट श्लोक,
18. मनुस्मृति 12.5,
19. मनुस्मृति 12.6,
20. मनुस्मृति 12.7,
21. मनुस्मृति 12.8,
22. मनु. 12.8 का परिशिष्ट श्लोक,
23. मनुस्मृति 12.9,
24. मनुस्मृति 2.238–39,
25. मनुस्मृति 7.43,
26. मनुस्मृति 5.107,
27. मनुस्मृति 1.86,
28. मनुस्मृति 9.256–260,
29. मनुस्मृति 5.106,
30. मनुस्मृति 9.246,
31. मनुस्मृति 4.12,
32. मनुस्मृति 2.88,93,
33. मनुस्मृति 2.99–100,
34. गीता 2.58,
35. मनुस्मृति 8.359,
36. मनुस्मृति 9.6–7,
37. मनुस्मृति 9.3,
38. मनुस्मृति 9.13,
39. मनुस्मृति 3.56,
40. मनुस्मृति 4.134,
41. मनुस्मृति 9.57,
42. परा"ारस्मृति 4.15,
43. मनुस्मृति 2.94–95,
44. मनुस्मृति 9.182–183,
45. मनुस्मृति 9.130–31,
46. मनुस्मृति 11.44–45,
47. मनुस्मृति 9.263